दिल्ली दंगे 2020 : आज भी खड़े हैं सवाल

योगेन्द्र यादव

1984 में दिल्ली में सिखों के कत्लेआम के बाद एक रिपोर्ट जारी हुई थी। मानवाधिकार संगठनों पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पी.यू.सी.एल.)और पीपल्स यूनियन फॉर डैमोक्रेटिक्स राइट्स (पी.यू.डी.आर.) के सम्मिलित प्रयास से जारी इस रिपोर्ट ने दिल्ली में हुए नरसंहार का वह सच देश के सामने रखा था जिसे उस वक्त के सत्ताधारी दबाना चाहते थे।कुलदीप नैयर, रजनी कोठारी और गोविंदा मुखोटी जैसे नागरिकों ने जोखिम उठाकर हिंसा के शिकार लोगों के बयान दर्ज किए और इस हिंसा के जिम्मेदार लोगों को नामजद किया।

इस ऐतिहासिक दस्तावेज के चलते आज भी उस वक्त के बड़े नेताओं को उस कत्लेआम का अपराधी माना जाता है। जो सच कोर्ट-कचहरी और न्यायिक आयोग नहीं बता सके, उसे नागरिकों के द्वारा तैयार इस रिपोर्ट ने देश के सामने रख दिया। उसी परम्परा में हाल ही में एक और रिपोर्ट सार्वजनिक हुई है। इस रिपोर्ट का विषय है फरवरी 2020 में दिल्ली में हुए दंगे। इन दंगों की 1984 के व्यापक नरसंहार से तुलना नहीं की जा सकती। इस बार हिंसा हिंदू और मुसलमान दोनों तरफ से हुई थी।

मृतक दोनों समुदाय से थे। लेकिन सच यह है कि सरकारी हलफनामे के अनुसार इन दंगों में मारे गए 53 व्यक्तियों में से 40 मुसलमान थे, घायलों में बहुसंख्यक और क्षतिग्रस्त घरों और दुकानों में तीन चौथाई शिकार मुसलमान थे। मतलब कि हिंसा कमोबेश एकतरफा थी। लेकिन विडम्बना यह कि इस इक्षहसा के आरोप में गिरफ्तार लोगों में आधे से ज्यादा मुसलमान हैं। दिल्ली दंगों के इस सच को देश के सामने रखते हुए हाल ही में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है।

देश के पूर्व प्रशासनिक अफसरों के संगठन कांस्टीच्यूशनल कंडक्ट ग्रुप द्वारा प्रायोजित इस स्वतंत्र रिपोर्ट को देश के नामचीन पूर्व न्यायाधीशों ने लिखा है। सुप्रीमकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश मदन लोकुर, दिल्ली हाईकोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश ए.पी. शाह, दिल्ली हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश आर.एस. सोढी, पटना हाईकोर्ट की पूर्व न्यायाधीश अंजना प्रकाश और देश के पूर्व गृह सचिव जी.के. पिल्लै ने 'अनसर्टेन जस्टिस : ए सिटीजन कमेटी रिपोर्ट ऑन द नॉर्थ ईस्ट दिल्ली वायलैंस 2020' द्वारा लिखित यह रिपोर्ट इस दंगे के पूरे सच को पूरी निष्पक्षता के साथ देश के सामने रखती है।

दिल्ली में हुई इक्षहसा से पहले और बाद के पूरे घटनाक्रम को बारीकी से रखती हुई यह रिपोर्ट हमारे सामने कई तकलीफदेह सवाल छोड़ जाती है। सबसे पहले तो यह रिपोर्ट इस सच को रेखांकित करती है कि दिल्ली में हुई हिंसा कोई संयोग या अक्समात हुई दुर्घटना नहीं थी। लंबे समय से नफरत की पृष्ठभूमि बनाई जा रही थी। रिपोर्ट नागरिकता संशोधन कानून के विरुद्ध हुए आंदोलन के दौरान

नेताओं, टी.वी. चैनलों और सोशल मीडिया ने खुलकर मुस्लिम देश का प्रचार किया और शाहीन बाग जैसे विरोध प्रदर्शनों को राष्ट्र विरोधी बताकर लांछित किया।

भाजपा के नेताओं ने दिल्ली चुनाव के दौरान जिस तरह के भड़कीले बयान दिए उन्होंने इ्क्षहसा का माहौल तैयार किया। सवाल यह है कि इन सबकी जानकारी होने के बावजूद पुलिस, प्रशासन, चुनाव आयोग और मीडिया तंत्र का नियमन करने वाली संस्थाओं ने कुछ भी प्रभावी कदम क्यों नहीं उठाए? दूसरा सवाल दिल्ली पुलिस की भूमिका पर उठता है। हिंसा की पूरी आशंका होने के बावजूद और इस संबंधी गुप्तचर रिपोर्ट मिलने के बाद भी दिल्ली पुलिस ने दंगे रोकने के पुख्ता इंतजाम क्यों नहीं किए?

दंगा शुरू होने के बाद भी पर्याप्त संख्या में पुलिस बल क्यों नहीं लगाया गया? कफ्र्यू लगाने में दो दिन की देरी क्यों की गई? दंगे के दौरान दिल्ली पुलिस अनेक जगह दंगाइयों के साथ खड़ी क्यों दिखाई दी? तीसरा सवाल दिल्ली की आम आदमी पार्टी सरकार को कटघरे में खड़ा करता है। हिंसा के शिकार लोगों को समय पर चिकित्सा सुविधा और तत्काल राहत देने में कोताही क्यों बरती गई? अपने घर से उजड़े लोगों के लिए बने राहत कैम्प को जल्दबाजी में क्यों समेटा गया? हिंसा और आगजनी के शिकार लोगों को मुआवजा देने में लालफीताशाही क्यों हावी रही?

चौथा सवाल हमारी न्याय व्यवस्था पर सोचने को विवश करता है। दिल्ली दंगों के बाद 758 एफ.आई.आर्ज दर्ज हुईं। इन सभी एफ.आई.आर्ज और कोर्ट में चल रहे मुकद्दमे की बारीकी से जांच करने के बाद यह रिपोर्ट हमारी न्याय व्यवस्था की जो तस्वीर पेश करती है वह बहुत उम्मीद नहीं जगाती। रिपोर्ट में प्रस्तुत साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि जहां-जहां मुसलमान हिंसा के शिकार हुए वहां अक्सर दिल्ली पुलिस और सरकारी अभियोग पक्ष ने जांच में कोताही बरती और ऐसा केस बनाया जो कोर्ट में टिक नहीं सकता था।

लेकिन जब आरोप नागरिकता संशोधन कानून के विरोधियों पर था, तब पुलिस ने आगे बढ़कर मनगढ़ंत सबूत बनाए, झूठे गवाह खड़े किए और अदालत को गुमराह करने की कोशिश की। न्यायपालिका ने इस मामले पर दिल्ली पुलिस के बारे में काफी सख्त टिप्पणी भी की। खास तौर पर दिल्ली दंगों को नागरिकता संशोधन कानून के विरोधियों की साजिश बताने वाले केस की जांच करते हुए यह रिपोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि यह केस फर्जी प्रतीत होता है। गौरतलब है कि यह केस अब भी जारी है और इसके तहत अनेक कार्यकत्र्ताओं को यू.ए.पी.ए. जैसे कानून के तहत जेल में रखा गया है जिसमें जमानत भी नहीं मिल सकती।इन चारों सवालों के पीछे एक सबसे बड़ा सवाल यह है कि अगर देश की राजधानी में सरकार की नाक के नीचे हुई इस शर्मनाक हिंसा का सच 1984 की तरह इस बार भी किसी गैर-सरकारी संस्था को बताना पड़ा है तो क्या इस देश में कानून का राज है?